पैरों के फफोलों तले आते आसमान से गिरते लाल गुलाब !

हम जो कुछ भी इस समय अपने ईर्द-गिर्द घटता हुआ देख रहे हैं उसमें नया बहुत कम है ,शासकों के अलावा।केवल सरकारें ही बदलती जा रही हैं,बाक़ी सब कुछ लगभग वैसा ही है जो पहले किसी समय था।लोगों की तकलीफ़ें, उनके दर्द और इस सबके प्रति एक बेहद ही क्रूर उदासीनता केवल इसी जमाने की कोई नयी चीज़ नहीं है। फ़र्क़ केवल इतना है कि हरेक ऐसे संकट के बाद व्यवस्थाओं के कपड़े और ज़्यादा फटे हुए नज़र आने लगते हैं।कहीं भी बदलता बहुत कुछ नहीं है।

वर्ष 1978 में रिलीज़ हुई मुज़फ़्फ़र अली की एक क्लासिक फ़िल्म 'गमन' है।कहानी लखनऊ के पास के एक गाँव में रहनेवाले ग़ुलाम हसन (फ़ारूख शेख़) की हैं जो रोज़ी-रोटी की तलाश में बम्बई जाकर टैक्सी तो चलाने लगता है पर मन उसका रात-दिन घर लौटने के लिए ही छटपटाता रहता है।और यही हाल गाँव में उसके लौटने का इंतज़ार कर रही पत्नी ख़ैरु (स्मिता पाटील) और उसकी माँ का रहता है।नायक कभी इतने पैसे बचा ही नहीं पाता कि घर जाकर वापस बम्बई लौट सके।फ़िल्म के अंतिम दृश्य में नायक को बम्बई रेल्वे स्टेशन के प्लेटफ़ॉर्म पर लखनऊ जाने वाली ट्रेन के सामने खड़ा हुआ बताया गया है।वह दुविधा में है कि जो पैसे बचाए हैं वह अगर आने-जाने में ही खर्च हो जाएँगे तो फिर हाथ में क्या बचेगा ?वह भारी मन से घर लौटने का फ़ैसला बदल देता है और वहीं खड़ा रह जाता है।इसी फ़िल्म में प्रवासी मज़दूरों की हालत पर लिखा गया प्रसिद्ध गीत है—सीने में जलन,आँखों में तूफ़ान सा क्यों है….. ?

‘गमन’ पिछले चालीस वर्षों से ही नहीं दो सौ सालों से जारी है।पर एक बड़ा फ़र्क़ जो इस महामारी ने पैदा कर दिया है वह यह कि नायक ने इस बात की चिंता नहीं की कि कोई ट्रेन उसे उसके शहर तक ले जाएगी भी या नहीं और अगर ले भी गई तो पैसे उससे ही वसूले जाएँगे या फिर कोई और देगा।वह पैदल ही चल पड़ा है अपने घर की तरफ़।और उसे इस तरह से नंगे पैर चलते देख उसकी औक़ात को अब तक अपने क़ीमती जूतों की नोक पर रखनेवाली सरकारें हिल गईं हैं।’गमन’ फ़िल्म का नायक तो दुविधा में था कि जो कुछ भी बचाया है वह तो जाने-आने में ही खर्च हो जाएगा।पर कोरोना की भारतीय फ़िल्म के इन लाखों नायकों ने अपनी इस घोषणा से राजनीति के प्रादेशिक ज़मींदारों को मुसीबत में डाल दिया है कि वे चाहे अपने गाँवों में भूखे मर जाएँ ,उन्हें वापस शहरों को तो लौटना ही नहीं है।एक रिपोर्ट में ज़िक्र है कि ये जो अपने घरों को लौटने वाले प्रवासी नायक हैं उनमें कोई 51 की मौतें पैदल यात्रा के दौरान सड़क दुर्घटनाओं में हो गई।भूख और आर्थिक संकट के कारण हुई मौतें अलग हैं।

प्रधानमंत्री जब कहते हैं कि कोरोना के बाद का भारत अलग होगा तो वे बिलकुल ठीक बोलते हैं। एक अमेरिकी रिपोर्ट का अध्ययन है कि महामारी के पूरी तरह से शांत होने में अट्ठारह से चौबीस महीने लगेंगे और तब तक दो-तिहाई आबादी उससे संक्रमित हो चुकी होगी।हमें कहने का अधिकार है कि रिपोर्ट ग़लत है।जैसे परिंदों को आने वाले तूफ़ान के संकेत पहले से मिल जाते हैं ,ये जो पैदल लौट रहे हैं और जिनके रेल भाड़े को लेकर ज़ुबानी दंगल चल रहे है उन्होंने यह भी तय कर रखा है कि अगर मरना ही है तो फिर जगह कौन सी होनी चाहिए।इन मज़दूरों को तो पहले से ज्ञान था कि उन्हें बीच रास्तों पर रुकने के लिए क्यों कहा जा रहा है ! कर्नाटक, तेलंगाना और हरियाणा के मुख्यमंत्री अगर प्रवासी मज़दूरों को रुकने के लिए कह रहे हैं तो वह उनके प्रति किसी ख़ास प्रेम के चलते नहीं बल्कि इसलिए है कि इन लोगों के बिना उनके प्रदेशों की आर्थिक सम्पन्नता का सुहाग ख़तरे में पड़ने वाला है।राज्यों में फसलें खेतों में तैयार खड़ी हैं और उन्हें काटनेवाला मज़दूर भूखे पेट सड़कें नाप रहा है।

कल्पना की जानी चाहिए कि 18 मज़दूर ऐसी किस मज़बूरी के चलते सीमेंट मिक्सर की मशीन में घुटने मोड़कर छुपते हुए नासिक से लखनऊ तक बारह सौ किलो मीटर तक की यात्रा करने को तैयार हो गए होंगे ? इंदौर के निकट उन्हें पकड़ने वाली पुलिस टीम को उच्चाधिकारियों द्वारा पुरस्कृत किया गया।एक चर्चित प्राइम टाइम शो में प्रवासी मज़दूरों के साथ (शायद कुछ दूरी तक) पैदल चल रही रिपोर्टर का एक सवाल यह भी था :'आपको लौटने की जल्दी क्यों है ?'

हमारे इस कालखंड का इतिहास भी अलग-अलग अध्यायों में भिन्न-भिन्न स्थानों पर तैयार हो रहा है।इसके एक भाग में निश्चित ही हज़ारों की संख्या में बनाए जा रहे वे मार्मिक व्यंग्य चित्र भी शामिल किए जाएँगे जिनमें चित्रण है कि हवाई जहाज़ों से बरसाए जाने वाले खूबसूरत फूल किस तरह से पैदल चल रहे मज़दूरों के पैरों तले आ रहे हैं जिनके तलवों में बड़े-बड़े फफोले पड़ गए हैं और जो घर तक पहुँचने के पहले ही फूट पड़ने को व्याकुल हो रहे हैं।

(लेखक वरिष्ठ पत्रकार एवँ राजनीतिक विश्लेषक हैं)